भारत में अधिकतर कृषकों के लिये कृषि जीवन-निर्वाह का एक सक्षम स्रोत नहीं रही है।

एक प्रतिष्ठित पत्रिका का पत्रकार कृषि की स्थिति का जायज़ा लेने के लिये गाँवों में किसानों के बीच जाता है तथा उनसे बतौर सर्वे एक प्रश्न पूछता है कि आप अपने बच्चे को भविष्य में क्या बनाना चाहते हैं? प्राप्त उत्तर बहुत चौंकाने वाला होता है। एक ऐसे देश में जहाँ कृषि मात्र एक आर्थिक व्यवसाय व रोज़गार का प्रश्न न होकर लोगों की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था तथा आस्था से जुड़ा मामला है, जहाँ कृषकों की फसलों के हिसाब से त्योहारों का निर्धारण होता है तथा कवियों की कल्पना में इसके स्वर्णिम दौर के गीत विद्यमान हैं, वहाँ 40% किसान अपने बच्चे को किसानी के धंधे को नहीं अपनाने देना चाहते! उनके अनुसार विकल्प के रूप में वे बच्चे को कोई भी सम्मानजनक कार्य करने की सहमति दे देंगे, लेकिन खेती-किसानी की नहीं! किसानों का यह उत्तर एकबारगी चौंकाता ज़रूर है; लेकिन कोई भी प्रबुद्ध संवेदनशील व्यक्ति भारत में कृषि की स्थिति को देखेगा तो संभवतः यही उत्तर देगा। कृषकों में लगातार बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति भारत में कृषि के जीवन-निर्वाह के बेहतर साधन न रह जाने की तस्दीक ही करती है। यह विडंबना इसलिये भी ज़्यादा वीभत्स महसूस होती है क्योंकि भारत ही वह देश है जहाँ 'भूमि' को 'माँ' का दर्जा दिया गया है, जहाँ हर प्रकार की जलवायु उपलब्ध है, जहाँ हर प्रकार की फसल को समर्थन देने वाली मिट्टी है, नदियों का इतना विस्तृत संगम है जो सिंचाई की आवश्यकता को पूरा कर सकता है और पर्वत, पठार, तटीय मैदान, डेल्टा आदि भी यहाँ हैं जिनमें हर प्रकार की फसल का उत्पादन हो सकता है। एक ऐसा विशाल मानव श्रम भी यहीं है जो कृषि से संबंधित पारंपरिक ज्ञान रखता है तथा इसके साथ ही उत्पादन को खपाने के लिये विशाल बाज़ार की भी यहाँ उपलब्धता है। कवि ने इसी वजह से 'भारत' को 'खेत' का पर्याय माना है-

"भारत......
मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द
जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जाए
बाकी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं
भारत का अर्थ
किसी दुष्यंत से संबंधित नहीं
वरन् खेत में दायर है
जहाँ अन्न उगता है।"

ऐसे में मन में कुछ प्रश्नों का उठना लाजिमी है, मसलन ऐसे कौन से लक्षण हैं जो भारत में कृषि के जीवन-निर्वाह के सक्षम स्रोत न रह जाने की पुष्टि करते हैं? क्या कृषि की यह दशा भारत में ही है? क्या सभी कृषकों की ऐसी ही स्थिति है? या इसमें भी छोटे-बड़े कृषक, ज़मींदार-रैय्यत व मजदूरों की स्थिति अलग-अलग है? जब कुछ बड़े किसान आज भी कृषि से लाखों रुपए कमा रहे हैं तो बाकी के लिये यह दुःखदायी साधन क्यों है? कृषि का जीवन निर्वाह का स्रोत न रह जाना क्या वर्तमान की स्थितियों का परिणाम है या कृषि की नियति हमेशा से ही ऐसी रही है? मूल प्रश्न यह है कि कृषि की स्थिति ऐसी क्यों है? क्यों कृषि 'प्राणदायिनी' से 'मौत का औजार' बन गई हैं? क्यों आज किसान के बारे में सोचते हुए वही स्मृति ताज़ा हो आती है जो प्रेमचंद ने 'होरी' का वर्णन करते हुए लिखी थी? क्यों पढ़-लिख जाने को किसानी से दूर जाने का पर्याय माना जाता है? और अंततः कृषि की यह स्थिति कब व कैसे सुधरेगी? इन प्रश्नों की तह तक जाकर ही हम इस मुद्दे की मूल ज़रूरत के साथ न्याय कर पाएंगे।

वर्तमान में, भारत में लगभग 50% प्रत्यक्ष व 70% अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के जीवन-निर्वाह का साधन कृषि है। ये लोग कृषि के अंतर्गत फसल उत्पादन के अलावा पशुपालन, बागवानी, मत्स्यपालन, रेशम उत्पादन, वन-वर्द्धन आदि क्रियाओं को संपन्न करते हैं, परंतु इनमें से अधिकांश व्यक्ति इनके माध्यम से एक सम्माननीय व गरिमापूर्ण जीवन जीने हेतु आवश्यक अवयवों को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। इस वर्ग की शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, बेहतर आवास व अवसर आदि तक पहुँच अभी भी दुरूह बनी हुई है। ज़्यादा चिंतनीय बात तो यह है कि किसानों का एक बड़ा वर्ग कृषि के माध्यम से जीवन-निर्वाह भी नहीं कर पा रहा है तथा आत्महत्या द्वारा जीवन समाप्त करने के लिये अभिशप्त है। निश्चित तौर पर कृषक वर्ग में एक समूह ऐसा भी है जो किसानी के माध्यम से ऐशो-आराम का जीवन जी रहा है तथा जिसके लिये कृषि जीवन-निर्वाह का साधन होने की बजाय एक लाभप्रद व्यवसाय है; परंतु ऐसे लोग अपवाद की संख्या में ही हैं; अधिकांश लोगों के लिये कृषि अस्तित्व का ही प्रश्न बनी हुई है। अपवादस्वरूप जो लोग कृषि के माध्यम से सम्माननीय व आर्थिक रूप से लाभप्रद जीवन जी रहे हैं वे उस समूह से संबंधित हैं जो या तो कर बचाने के लिये कृषक का लबादा ओढ़े हुए हैं या जिनके लिये कृषि मात्र एक अल्पकालिक पेशा है। भूमि का बड़ा स्वामित्वधारी कृषक वर्ग, जो विभिन्न योजनाओं व उपकरणों का बेहतर प्रयोग कर पा रहा है, के लिये ही कृषि जीवन-निर्वाह का सक्षम स्रोत बनी हुई है।

ऐतिहासिक रूप से भी कृषि से जुड़े लोगों के लिये यह कोई वैभव का साधन नहीं रही है; कर में अधिकतम भागीदारी होने के बावजूद प्राचीन व मध्यकाल में कृषि से जुड़े लाभ कभी भी बहुसंख्यक किसानों को प्राप्त नहीं हुए। इनका अधिकतम हिस्सा बिचौलियों व शासक वर्ग ने हड़प लिया। औपनिवेशिक काल में तो पूरा शोषण तंत्र कृषकों की बदहाली पर ही टिका था तथा कृषकों के अधिशेष को सोखकर ही ब्रिटेन के साम्राज्य को ऊर्जा प्राप्त होती थी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में कृषि का इतना महत्त्व होने के बावजूद यह आज भी बहुसंख्यक कृषकों के लिये जीवन-निर्वाह का सक्षम स्रोत नहीं है। चूँकि, कृषि की उत्पादकता व सशक्तता भूमि, मृदा, जल, जलवायु, तापमान व वर्षण जैसे पर्यावरणीय व भौतिक घटकों; भूमि सुधार, सिंचाई, संकर बीज, ऊर्जा, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, तकनीक एवं मशीनीकरण जैसे आर्थिक कारकों तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति व प्रशासनिक दक्षता एवं ईमानदारी आदि जैसे अन्य कारकों

पर निर्भर है, अतः इसकी संवेदनशीलता बढ़ जाती है। कृषि की यह संवेदनशीलता ज़्यादा गहराई से इसलिये भी चर्चा का विषय बनती है क्योंकि भारत के लिये कृषि का महत्त्व न केवल खाद्य सुरक्षा, रोज़गार, ग्रामीण विकास, उद्योगों के लिये कच्चे माल, निर्यात संवर्द्धन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है वरन् यह महिला सशक्तिकरण, गरीबी निवारण, धारणीय विकास को भी सुनिश्चित करने वाला प्रमुख कारक है।

वर्तमान में कृषि के जीवन-निर्वाह के बेहतर स्रोत न रह जाने के कारणों पर चर्चा करें तो स्पष्ट होगा कि इसके लिये कोई एक प्रमुख कारण ज़िम्मेवार न होकर एक पूरी श्रृंखला ही दोषी है। कृषि की कम उत्पादकता, सिंचाई के लिये मानसून पर निर्भरता, सार्वजनिक निवेश की गुणवत्ता का कमज़ोर होना; ऊर्जा, परिवहन, भंडारण व वितरण के क्षेत्र में आधारभूत ढाँचे का पिछड़ापन, कृषि साख की समस्या, दोषपूर्ण न्यूनतम समर्थन प्रणाली, भूमि सुधार की समस्या, तकनीक कौशल का अभाव आदि कारणों ने आज इसे एक लाभप्रद व्यवसाय में परिवर्तित नहीं होने दिया है। इन्हीं कारकों के आलोक में हम कृषि की दुर्दशा को समझ सकते हैं; यही वजह है कि कृषि आज सामान्यतः नकारात्मक कारणों से ही चर्चा का विषय बनती है, फिर वह चाहे कृषक आत्महत्या का मामला हो या कृषकों द्वारा ऋण-माफी हेतु निरंतर प्रदर्शन का मसला। कृषकों द्वारा अपनी उपज को सड़क पर फेंकना हो या कृषि नीतियों में प्रशासनिक अकर्मण्यता, ये खबरें भी आमफहम हैं। यही परिस्थितियाँ इस बात का सूत्र देती हैं कि क्यों कृषक आज मज़दूर बन एक नारकीय शहरी जीवन जीने में खुश है, लेकिन वह कृषि को अपना पूर्णकालिक पेशा नहीं बनाना चाहता! कृषि की इसी दयनीय स्थिति के लिये ही कवि ने लिखा है-

"उन्हें धर्मगुरुओं ने बताया था प्रवचनों में
आत्महत्या करने वाला सीधे नर्क जाता है
तब भी उन्होंने आत्महत्या की
क्या नर्क से भी बदतर हो गई थी उनकी खेती।"

ऐसा नहीं है कि सरकारी स्तर पर इस स्थिति को बदलने के प्रयास नहीं हो रहे हैं। सरकार कृषि के माध्यम से देश की आर्थिक प्रगति को तीव्र करने तथा इसका लाभ अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने के लिये राष्ट्रीय कृषि नीति, राष्ट्रीय किसान नीति, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, जैविक कृषि के लिये परंपरागत कृषि विकास योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, ई-नाम, राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण मिशन, नीली क्रांति की केंद्रीय योजना तथा राष्ट्रीय गोकुल मिशन आदि के माध्यम से प्रयास कर रही है। परंतु कृषक जागरूकता व शिक्षा का अभाव, सरकारी हीलाहवाली व भ्रष्टाचार तथा कृषि के राज्य सूची का विषय होने के कारण समन्वय के अभाव ने इन प्रयासों को अपनी परिणति पर नहीं पहुँचने दिया है।

कृषि बहुसंख्यक कृषकों के लिये न केवल जीवन-निर्वाह का स्रोत वरन् देश की जीवन-रेखा व सफल उद्यम के रूप में स्थापित हो, इसके लिये बहुत कुछ किया जाना शेष है। सर्वप्रथम, कृषि के लिये एक समग्र व एकीकृत रणनीति की आवश्यकता है, जिसके लिये कृषि को समवर्ती सूची का विषय बनाने का सुझाव भी प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही, भूमि पट्टेदारी संबंधी कानूनों में सुधार, सार्वजनिक-निजी मॉडल के द्वारा भंडारण, विपणन, संचार, सड़क, बाज़ार संबंधी अवसंरचना का विकास, सिंचाई प्रबंधन तथा जलवायु परिवर्तन आधारित बीमा योजना का विकास, गुणवत्तापूर्ण बीज, उर्वरक व कीटनाशकों का विकास, सरल व सस्ती तकनीक को बढ़ावा तथा दक्ष आपूर्ति श्रृंखला का विकास जैसे क्षेत्रों में ईमानदारीपूर्वक क्रियान्वयन कर कृषि को लाभकारी बनाया जा सकता है। इसके अलावा, उत्तर-पूर्व क्षेत्र की कृषि क्षमता का दोहन, न्यूनतम समर्थन मूल्य को लाभकारी बनाकर, ई-मंडी, ई-बाज़ार, ई-सूचना आदि को सुविधाजनक रूप से बढ़ावा देकर तथा मत्स्यपालन, पशुपालन, मधुमक्खी पालन आदि का प्रशिक्षण व सब्सिडीयुक्त ऋण देकर तथा वैकल्पिक रोज़गार द्वारा आय को बढ़ावा देकर भी कृषि व कृषक दोनों को एक सम्माननीय मुकाम हासिल हो सकता है जो अंततः राष्ट्र की प्रगति में सहायक होगा।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इसमें कोई दो राय नहीं कि भारत में कृषि जीवन-निर्वाह का एक सक्षम स्रोत नहीं रही, लेकिन इसे 'कृषि के अंत' की उद्घोषणा के रूप में न देखकर कृषि की गिरती स्थिति के रूप में ही स्वीकार करना चाहिये तथा सरकार, समाज, प्रशासन व व्यक्ति सभी के स्तर पर विभिन्न सुधारों को लागू कर इसको आजीविका के एक सक्षम साधन के साथ-साथ समाज की संवृद्धि निर्धारण करने वाले एक महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में स्थापित करना चाहिये।

"हम न रहेंगे, तब भी तो ये खेत रहेंगे
इन खेतों पर घन लहराते शेष रहेंगे
जीवन देते प्यास बुझाते
श्याम बदरिया के, लहराते केश रहेंगे।"

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/agriculture-has-not-been-a-competent-source-of-livelihood-for-most-farmers-in-india